चिंतन-अनुचिंतन

भाषा, साहित्य एवं मानविकी के पूर्व समीक्षित तथा संदर्भित गुणवत्तापूर्ण
शोधआलेखों का पुस्तक अध्याय के रूप में संकलन

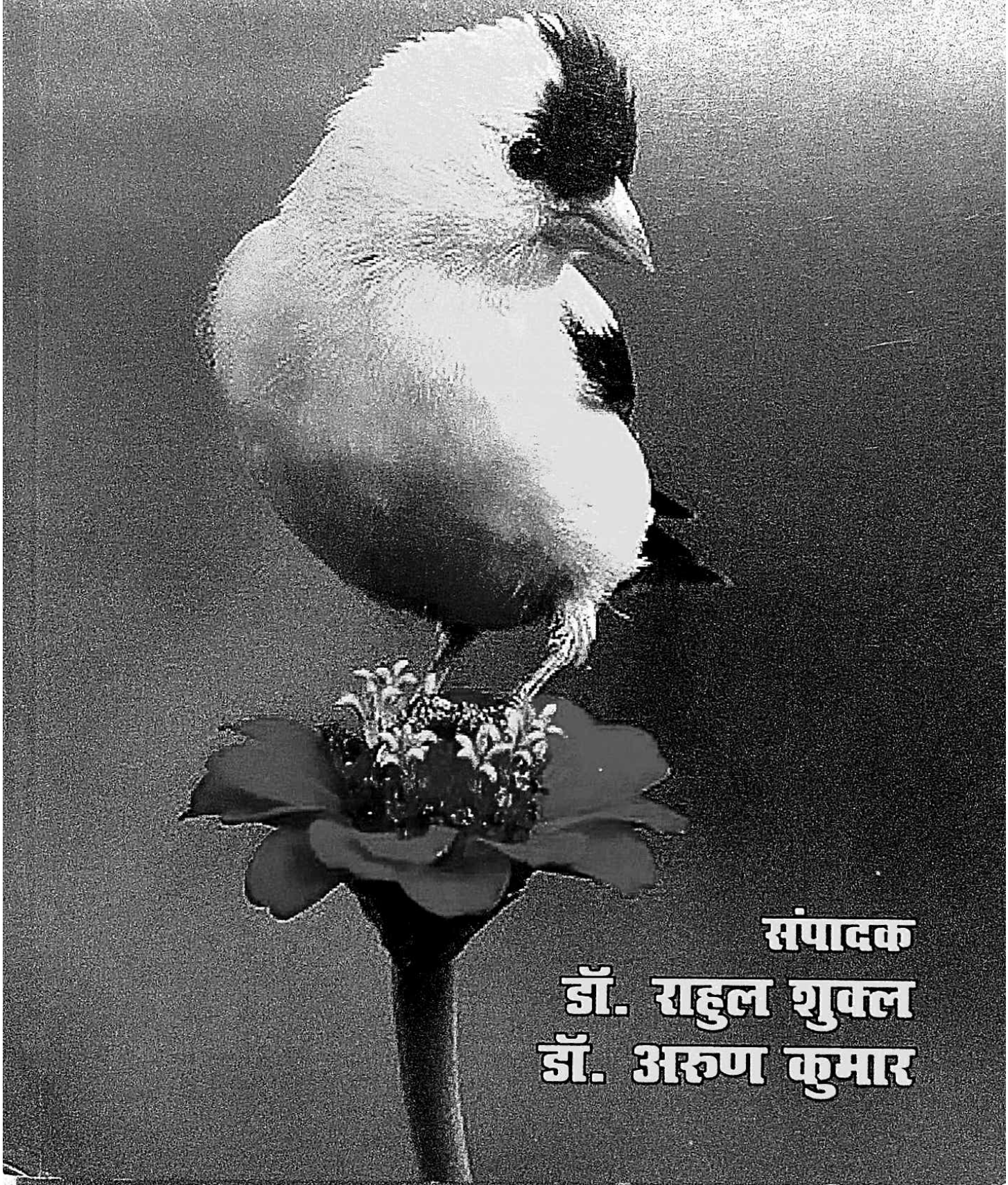

संपादक
डॉ. राहुल शुक्ल
डॉ. अरुण कुमार

चिंतन-अनुचिंतन

भाषा, साहित्य एवं मानविकी के पूर्वसमीक्षित तथा संदर्भित गुणवत्तापूर्ण
शोधआलेखों का पुस्तक अध्याय के रूप में संकलन

संपादक

डॉ. राहुल शुक्ल

डॉ. अरुण कुमार

हिन्दी-विभाग, अभिनवप्रज्ञा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हरदौरपुर, चौडगरा, फतेहपुर (उ.प्र.)

समता प्रकाशन

रूरा, कानपुर (देहात)-209303

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक/संपादक की लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक या इसके किसी भी अंश का किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता, इसे संक्षिप्त, परिवर्तित कर प्रकाशित करना कानूनी अपराध है।

ISBN : 978-81-947189-7-0

पुस्तक	:	चिंतन-अनुचिंतन
संपादक	:	डॉ. राहुल शुक्ल, डॉ. अरुण कुमार
प्रकाशक	:	**समता प्रकाशन** बजरंग नगर, रूरा- कानपुर देहात Mob. : 9450139012, 9936565601 Email - samataprakashanrura@gmail.com
©	:	संपादक
संस्करण	:	प्रथम, 2021
मूल्य	:	₹ 595.00
शब्द-सज्जा	:	रुद्र ग्राफिक्स, हनुमन्त विहार, नौबस्ता, कानपुर-21
आवरण	:	गौरव शुक्ल, कानपुर-21
मुद्रक	:	आर्यन डिजिटल प्रेस, नई दिल्ली

Chintan-Anuchintan

Collection of Qualitative Peer-reviewed and Referred Research Paper of Languages, Literature & Humanities in the form of book-Chapter

Editor : Dr. Rahul Shukla, Dr. Arun Kumar

Price : Five Hundred Ninty Five Only.

अनुक्रम

1. अस्तित्व की तलाश में किन्नर-समाज
डॉ. अंजू शुक्ला 09

2. दलित साहित्य की अवधारणा
प्रा. कैलाश काशिनाथ बच्छाव 15

3. वर्तमान समाज में संत-साहित्य का महत्व
डॉ. शेख शहेनाज अहेमद 20

4. कठगुलाब : नारी-जीवन का दस्तावेज
लक्ष्मेश्वरी, डॉ. हरिणीरानी आगर 25

5. हिंदी सिनेगीत : स्वरूप और विकास
डॉ. रघुनाथ नामदेव वाकले 31

6. समाचार पत्र-पत्रिकाएं और डिजिटल युग
डॉ. शशि गुप्ता 35

7. समसामयिक संदर्भ में डिजिटलीकरण की उपयोगिता
डॉ. तुकाराम चाटे 41

8. वृद्धों के प्रति संवेदनशून्य होते समाज का सच और चन्द्रकान्ता की कहानियां
पवन कुमार रावत 49

9. कानपुर जनपद के हिंदी कथाकारों में समाजवादी विचारधारा का प्रभाव
डॉ. संदीप कुमार त्रिपाठी 56

10. साहित्येतिहास की आवश्यकता का प्रश्न
डॉ. राहुल शुक्ल, सुधीर कुमार 61

11. मार्क्सवादी आलोचक डॉ. मैनेजर पांडेय की इतिहास-दृष्टि
डॉ. अरुण कुमार, डॉ. समीक्षा शुक्ला 65

12. इंटरनेट की दुनिया और पत्रकारिता का भविष्य
डॉ. ज्ञानेश्वर गणपतराव रानभरे 69

13. महिला-सशक्तिकरण की दिशाएं
डॉ. (श्रीमती) मंजुलता कश्यप, रामसेवकराम भगत 76

14. शिक्षा से नारी-सशक्तिकरण
डॉ. (श्रीमती) रविन्द्र चौबे 84

15. कोविड-19 का भारतीय समाज पर प्रभाव
श्रीमती अर्चना दीवान, डॉ. कविता ठक्कर 89

3

वर्तमान समाज में संत-साहित्य का महत्व

डॉ. शेख शहेनाज अहेमद

भक्तिकालीन संतसाहित्य मध्ययुगीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का परिणाम है। भक्तिकालीन संतसाहित्य में वर्गभेद, वैषम्य, छुआछूत आदि कुरीतियों के समूल उन्मूलन का विषद चित्रण मिलता है। भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग भी कहा जाता है। भक्तिकाल का साहित्य उच्चतम साहित्यिक गुणों से युक्त है इसीलिए वह साहित्य के चरम शिखर पर आसीन है। अज्ञान, भेदाभेद, बाह्य-आडंबरों को दूरकर ज्ञान का निर्मल प्रकाश प्रकीर्ण करने का महत्वपूर्ण कार्य इस साहित्य ने किया है। मध्ययुगीन संतकवियों ने अपनी ज्ञानवाणी का प्रसार लोकभाषा में किया है। यही कारण है कि यह साहित्य सीधे लोकमानस तक पहुंचा है। इस साहित्य में लोकमंगल की भावना सर्वोपरि रही है। इन संतकवियों ने भक्ति को मुक्ति का साधन बताया है। इस लोकमंगल की महत भावना के कारण भक्तिकालीन संतसाहित्य को सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ है। हिन्दी के भक्तिकालीन संतसाहित्य में कबीर का नाम सर्वप्रथम है। उनके साथ-साथ सूर, तुलसी, जायसी, रहीम, रसखान, नामदेव, मीराबाई आदि भी बड़े महत्वपूर्ण नाम हैं। इन संतों ने धर्म-दर्शन, जीव-जगत, माया-ब्रह्म आदि विषयों पर अपने मौलिक विचार प्रकट किए हैं। इन संतकवियों ने विषम से विषम परिस्थितियों का सामना किया है। इन्होंने धर्म और जाति के नाम पर होने वाले सामाजिक भेदभाव को स्वयं झेला है और उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्ति दी है। ईश्वर तो जाति-धर्म से परे सर्वसामान्य के लिए भक्ति का मार्ग खोलते हैं, इसीलिए कबीर कहते हैं—

''अल्ला एकै नूर उपजाया ताकि कैसी निंदा।
ताते नूर जग किया कौन भला कौन मंदा।।''

कबीर को यह सब कहे वर्षों बीत गए हैं परन्तु हम आज भी समाज में उसी जाति-व्यवस्था को व्याप्त देखते हैं। छुआछूत एवं जातिगत भेदभाव आज भी हमें देखने को मिलता है। कबीर कहते हैं कि जब ईश्वर ने एक ही प्रकार के रक्त से हमें बनाया है तो फिर यह भेदाभेद कैसा? कोई पवित्र और दूसरा अपवित्र कैसे हो सकता है? इतना ही नहीं कबीर शोषितों-पीड़ितों को ऊपर उठाकर समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का हर संभव प्रयत्न करते दीखते हैं। वे कोरे ज्ञान को नहीं बल्कि मानव प्रेम को सर्वाधिक महत्व देते हैं—

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंड़ित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।''[1]

ईश्वर को प्राप्त करने के लिए लोग तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं— जप, तप, होम, हवन सब करते हैं, परन्तु हमारे आचरण में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। संतों की स्पष्ट मान्यता है कि ईश्वर की प्राप्ति हेतु तीर्थाटन करने अथवा यहां-वहां भटकने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह तो कण-कण में जर्रे-जर्रे में समाया हुआ है। वास्तव में ईश्वर तो हमारे अंदर ही वास करता है। हमारी अवस्था उस मृग के समान है, जो अपनी नाभि में बसी कस्तूरी को नहीं पहचानता और उसे ढूंढने के लिए इधर-उधर वन-वन भटकता रहता है। विभिन्न तीर्थस्थलों में जाकर ईश्वर को ढूंढने का मिथ्याभ्रम ठीक ऐसा ही है। संतों का मानना है कि उसे पाने का केवल और केवल एक ही मार्ग है और वह है— आचरण की शुद्धता। कबीर कहते हैं—

''मोको कहां ढूंढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास।''[2]

संतसाहित्य उतना ही प्राचीन है जितनी प्राचीन मनुष्य मात्र के हृदय की उपासना-प्रवृत्ति। संतकवियों ने अपने विचारों में निहित सत्य को शाश्वत एवं विश्वजनीन मानते हुए उन्हें दूसरों के हितार्थ प्रकट करने का सत्प्रयत्न किया है। इन कवियों का साहित्य शास्त्र-विवेचन और पांडित्य-प्रदर्शन मात्र नहीं है, अपितु यह उनके अपने अनुभवों की उपज है इसीलिए वह सीधे जनमानस में प्रवेश कर जाता है। 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ' जैसी स्वीकारोक्ति द्वारा कबीर स्पष्ट करते हैं कि उन्होंने जो कुछ भी अर्जित किया अपनी साधना और अनुभव के बल पर प्राप्त किया। वे शास्त्रों और पोथियों की बात नहीं करते। अनुभूति की इसी सत्यता के कारण कबीर की उक्तियां आज भी प्रासंगिक हैं।

आज भले ही आधुनिकता का मुखौटा लगाए हम अपने को आधुनिक मान बैठे हों परन्तु हमारी मानसिक अवस्था आज भी मध्ययुग से बदतर ही है, बेहतर नहीं। आज का मनुष्य शंका, उलझाव, विषमता-बोध, असंगति-विसंगति और अनिश्चय की मानसिकता से ग्रस्त है। पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण, अतिबौद्धिकता, वैज्ञानिकता, नगरीकरण, बढ़ती हुई जनसंख्या, फिल्मों का अपसांस्कृतिक प्रभाव आदि के कारण हमारे परंपरागत जीवनमूल्य दरकने तो लगे ही हैं, वे बहुत तेजी के साथ बदल भी रहे हैं। आज का मनुष्य बुरी तरह स्वार्थी हो गया है। वैयक्तिकता, निराशा, कुंठा, अनास्था, घुटन, विद्रोही भावना उसमें छा गई है। एक दौर वह भी था, जब भारतीय समाज में सर्वाधिक महत्व मानवमूल्यों का था किन्तु स्वार्थ की अंधी दौड़ में आज हम बिना मंजिल के पते के बस बेतहाशा भागे चले जा रहे हैं। इस संबंध में कबीर कहते हैं—

''स्वारथ को सब कोउ सगा, जग जगला ही जाणि।
बिन स्वारथ जो आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछांणि।।''[3]

आज बौद्धिकता का महत्व बढ़ता जा रहा है। परिणाम यह है कि यह अतिबौद्धिकता परंपरागत मानवीय मूल्यों को निगले ले रही है। निष्ठा, शील, सत्य, नैतिकता, उदारता, प्रामाणिकता, सदाचार, पवित्रता आदि मूल्य आज मनुष्य में लगभग चुक चुके हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों का निरंतर विघटन और ह्रास हो रहा है। मनुष्य को उसके गुणों के कारण नहीं बल्कि उसके पास उपलब्ध अर्थ की प्रचुरता के कारण पहचाना जा रहा है। आज का मनुष्य इतना लोभी, लालची और स्वार्थी हो गया है कि वह अपना जमीर

बेचकर साधन-संपन्न धनवानों के आगे अपने को पूर्णत: झुकाए ले रहा है। आज के मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओं का दास हो गया है। अब उसके लिए गुणों और मूल्यों की कोई कीमत नहीं रही। जिसके पास जितना पैसा है, वह उतना ही बड़ा है। सम्पूर्ण सर्वत्र यही नीति सर चढ़कर बोल रही है। हम पैसे के पीछे कुछ इस कदर दौड़ रहे हैं कि आज हमें अपने देश, समाज, राष्ट्र, प्रकृति, परिवेश, पर्यावरण यहां तक कि अपने स्वास्थ्य से भी कोई सरोकार नहीं रहा। जो सदाचारी है, गुणवान है, ईमानदार है, मेहनती है, उसे उसकी योग्यता और काबिलियत के अनुसार अच्छी जगह प्रवेश का मौका नहीं मिल पा रहा है और जो नितांत गुणहीन और अयोग्य हैं वे अपने अर्थबल के सहारे निरं आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। इन सब स्थितियों से हमारी गुणवत्ता धीरे-धीरे कमजोर पड़ती जा रही है। दूसरी ओर शिक्षा ने भी बाजार का रूप धारण कर लिया है।

इन सारी स्थितियों को देखते हुए ही कमलेश्वरजी ने लिखा है– ''कितना विचित्र और विकराल है यह दृश्य जो कुछ ही वर्षों में इस देश में उपस्थित हो गया है कि जहर खाकर आदमी जीवित रह सकता है पर एक कटोरी दाल पीकर मर सकता है। इमारतें बनतीं जाएं और आदमी लुटता जाए, बैंक खुलते जाएं और आदमी गरीब होता जाए, सरकारें बनती जाएं और आदमी पथराता जाए और खून के आंसू रोता जाए।''[4] अत: इस भीषण वर्तमान परिवेश में संतों की पीयूषवाणी ही जनसाधारण को संबल प्रदान कर सकती है। आज के त्रस्त, उपेक्षित, उत्पीड़ित मानव को परिज्ञान प्रदानकर उसका पथ-प्रदर्शनकर समाज को सशक्त, निर्दोष एवं कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करना केवल संतसाहित्य के सामाजिक आदर्शों के वरण से ही संभव है।

मध्ययुग की भांति आज भी हर जगह व्याप्त भेदाभेद, सांप्रदायिकता, अंतरराज्यीय एवं अन्तर्देशीय संबंध और समस्याएं कमोबेस वैसी ही हैं। संतों का मानना था कि हमें इस सब को छोड़कर मध्यम मार्ग अपनाना चाहिए। संत दादूदयाल ने कहा कि हिन्दुओं और मुसलमानों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है, दोनों में एक ही परमसत्ता का निवास है। इस संबंध में वे कहते हैं–

''दादू न हम हिन्दू होवैंगे, न हम मुसलमान।
भाते दर्शन मैं हम नाहीं, यहि नाते रहिमान।।''[5]

इसी प्रकार संत रज्जब का भी यही मानना है कि राम-रहीम में कोई भेद नहीं है। आज मंदिर-मस्जिद के नाम पर राजनीति की नौटंकी हो रही है। दंगे-फसाद करवाए जा रहे हैं। धर्म के नाम पर समाज का सांप्रदायिक ध्रुवीकरण किया जा रहा है और इस जाति-धर्मगत भेदभाव से हमारा समाज ऊपर नहीं उठ पा रहा है। संतों का मानना था कि कोई भी व्यक्ति किसी जाति विशेष में जन्म लेने से छोटा या बड़ा नहीं होता, व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से होती है। कबीर कहते हैं कि ब्राह्मण को ब्रह्म के विषय में चिंतन करना चाहिए। जाति जन्मना न होकर कर्मणा होनी चाहिए। अत: जाति-धर्म के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में भेदभाव करना व्यर्थ है। संतकवि सार्वभौम मानव धर्म के प्रतिष्ठापक थे। रैदास का भी मानना था कि जब तक समाज में जाति-धर्मगत भेद बना रहेगा तब तक मानवता की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती–

''जात-पात के फेर महि, उरझि रहे सब लोग।
मानुषता को खात है, रैदास जात का रोग।।''[6]

मानवता के लोप के कारण ही आज का समाज सांप्रदायिकता की आग में झुलस रहा है। चारों ओर दहशत और आतंकवाद का बोलबाला है। इन विपरीत परिस्थितियों में मानवीय एकता का मार्ग संतसाहित्य से ही निकाला जा सकता है। संतकवियों ने अपने साहित्य के माध्यम से सांप्रदायिक दूरियों को कम करने का स्तुत्य प्रयास किया है। संतकवियों ने लोकधर्म की स्थापना की और जन सामान्य को रूढ़ और जर्जर अंधविश्वासों से मुक्तकर मानवता के नए सूत्र में आबद्ध किया साथ ही बाह्य-आडंबर, मिथ्याचार एवं कर्मकाण्ड का पूरी ताकत से विरोध किया। वर्तमान परिवेश में उच्चविद्या विभूषित होने के बावजूद भी लोगों में इन कर्मकांडों का बोलबाला है। लोग अंधविश्वासों के चलते अपना विवेक तक खो चुके हैं। वर्तमान परिदृश्य पर एक विहंगम दृष्टिपात करने से यह प्रतीत होता है कि वर्तमान परिस्थितियां मध्यकालीन परिस्थितियों से कुछ ज्यादा भिन्न नहीं हैं। संतकवियों का पहला और आखिरी एकमात्र उद्देश्य था– जन सामान्य को जागरूक कर उसका पथ-प्रदर्शन करना। कबीर ने मूर्तिपूजा का विरोध किया। उनके अनुसार जो मूर्ति को कर्ता मानकर पूजते हैं, वे मृत्यु की काली धारा में डूब जाते हैं–

''पाहन केरा पूतरा जो पूजै करतार।
येहि भरोसे रहि बूडे काली धार।।''[7]

संतकवियों ने प्रेमभावना से मानवीय एकता स्थापित करने का सदोपदेश किया है। इन कवियों का प्रेम आध्यात्मिक होकर भी लोकपरक तथा वास्तविक संदर्भों में मानवीय है। वे मनुष्य की वाणी और उसके कर्मों के समन्वय पर बल देते हैं। इस अनैतिक और अनाचारी युग में मनुष्य दिन-प्रतिदिन आलस्य की ओर उन्मुख होता चला जा रहा है। कर्म से पलायन करने के कारण ही वह संत्रस्त जीवन व्यतीत कर रहा है। ऐसे में संतकवियों द्वारा प्रतिपादित कर्म का शाश्वत संदेश उपयुक्त प्रतीत होता है। संतकवियों के अनुसार कर्म ही मनुष्य का धर्म है। संतसाहित्य दुरूहता या जटिलता का साहित्य नहीं है वरन् यह मनुष्य की सहजता तथा स्वाभाविक मन:स्थितियों का साहित्य है। इस साहित्य में जन सामान्य की आशा, आकांक्षा, सुख-दुख सन्निहत हैं। जनजागरण को चेतना लेकर स्फुरित हुआ यह साहित्य आशावादी मूल्यों की स्थापना करता है। संतसाहित्य में सामाजिक आदर्श और संवेदना अधिक है। इस साहित्य में मानव की स्वार्थपरता, अर्थलोलुपता और कामुकता पर तीव्र प्रहार हुआ है। संतकवियों ने जीवनदायिनी शक्तियों की ओर जन सामान्य का ध्यान आकर्षित किया और समाज को एक सशक्त कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करने की चेष्टा की है। इस साहित्य में पुनर्जागरण का संदेश है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी हम मुक्ति के विधान का प्रयत्न कर सकते हैं। यह साहित्य मानवीय-मूल्यों के विकास का साहित्य है। आज इस साहित्य की मूल्यवत्ता पहले से भी अधिक बढ़ गई है। यह साहित्य आज की दिग्भ्रमित युवा पीढ़ी को अपने कर्तव्यों का स्मरण करवाकर सही रास्ते का संधान कर सकता है। हिंसा से दूर रहकर,

धैर्य को न खोते हुए संयम के साथ जीवनपथ पर निरंतर आगे बढ़ते हुए, आज का
किस तरह लोकमंगल में सहभागी हो सकता है, यह साहित्य इसका भलीभांति निर्देश
सकता है। इससे हमारी संस्कृति का विकास भी होगा। इस साहित्य में लोकमंगल का
महत तत्व मौजूद है, उसकी वर्तमान समय और समाज को सबसे अधिक आवश्यकता
है। यह साहित्य भौगोलिक सीमाओं को लांघकर मन का मन से मिलाप करवाता
इन्हीं सब कारणों से संतसाहित्य वर्तमान परिदृश्य में पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक
उठा है। आज समाज को इस साहित्य की नितांत आवश्यकता है। यह वर्तमान की
आवश्कताओं की पूर्ति तो कर ही सकता है साथ ही साथ हमारी आज की समस्त
सामाजिक समस्याओं के निराकरण में भी पूरी तरह सक्षम है।

संदर्भ

1. भक्तिकालीन काव्य में मानवीय-मूल्य, डॉ. हणमंतराव पाटिल, समता प्रकाशन, कानपुर
2. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास, डॉ. प्रताप नारायण टंडन, विवेक प्रकाशन, लखनऊ
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ. रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
4. कबीर, आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रंथ रत्नालय कार्यालय, बंबई
5. कबीर ग्रंथावली, डॉ. श्यामसुंदर दास (संपा.), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
6. कबीरदास : सृष्टि और दृष्टि, गरिमा प्रकाशन, कानपुर
7. भक्तिकालीन काव्य में मानवीय-मूल्य, डॉ. हणमंतराव पाटिल, समता प्रकाशन, कानपुर

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
हुतात्मा जयवंतराव पाटिल महाविद्यालय, हिमायतनगर
जिला- नांदेड़ (महाराष्ट्र)